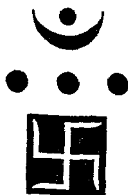
देव-दर्शन-पूजन रहस्य



नाजमल बोथरा

प्रकाशक
रावतमल हरखचन्द बोथरा

प्राप्ति स्थान

रावतमल हरखचन्द
६, सतापट्टी, कलकत्ता ७

श्री जैन श्वेताम्बर पञ्चायती मन्दिर
१३६, तूलापट्टी, कलकत्ता

रावतमल हरखचन्द बोथरा
कोठारी मोहल्ला, बीकानेर



निवेदन

देव-दर्शन पूजन रहस्य को प्रस्तुत करते हुए आज मुझे प्रसन्नता हो रही है। इस विषय की पुस्तक की अत्यन्त उपयोगिता एव आवश्यकता को देखते हुए इसका अभाव मुझे अखर रहा था। केवल मैं ही नहीं और भी कई महानुभाव इस विषय की पुस्तक की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे एक पत्र में भी ऐसी पुस्तक की माग देखी गई। अतएव मेरी यह इच्छा हुई कि मैं इस विषय में सरल एव सुबोध भाषा में कुछ लिखूँ। यह सच है कि इस पुस्तक के सम्पादन करने में जिस योग्यता, ज्ञान एव अनुभव की आवश्यकता है, वह मुझ में नहीं है। यही कारण है कि जिस रूप में यह पुस्तक होनी चाहिए थी वैसी प्रस्तुत नहीं कर सका हूँ। फिर भी सद् प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने यह प्रयास किया है। आशा है पाठक त्रुटियों के लिए क्षमा प्रदान करते हुए मुझे उनसे अवगत करने की कृपा करेंगे ताकि द्वितीय सस्करण में उन्हें दूर किया जा सके। इसके सम्पादन करने में मैंने प्रधानतया चैत्यवन्दन भाष्य, जिनराज भक्ति आदर्श, प्रबोध टीका एव चैत्यवन्दन रहस्य का सहारा लिया है, अतएव मैं इनके लेखक महानुभावों का अत्यन्त आभारी हूँ। पडित प्रवर श्री प्रभुदास बेचरदास

एव धार्मिक शिक्षक श्री इन्दुकुमारजी मेहता से मुझे इसमें सहयोग प्राप्त हुआ है इसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ मेरे विद्वान मित्र, भगवती सूत्र के अनुवादक श्रीमदनकुमारजी मेहता न्यायतीर्थ ने आवश्यक सुझाव एव इसके प्रूफ सशोधन करने आदि में अपना अमूल्य समय देकर जो सहयोग दिया है एतदर्थ मैं उनका अत्यधिक आभारी हूँ।

आशा है पाठकगण इससे समुचित लाभ उठा कर मेरा श्रम सफल करेंगे।

अक्षयतृतीया
स० २०१३

—ताजमल बोथरा

* भूमिका *

प्राणीमात्र स्वस्वरूप (ज्ञान, दर्शन एव चरित्र गुण) की अपेक्षा से एक समान और अनन्त शक्ति सम्पन्न है। फिर क्या कारण है कि सिद्ध परमात्मा तीनों लोकों के पूज्य और सांसारिक मनुष्य (हमलोग) उनके पूजक हैं? वे तीनों लोकों के स्वामी और हमलोग उनके सेवक हैं? वे परमात्मा और हमलोग बाह्यात्मा हैं? कारण स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी आत्मा का—अपने शुद्ध स्वरूप का विकास कर लिया है और हमलोग अभी तक यह महान् कार्य नहीं कर पाये हैं। तात्पर्य यह कि हम कर्मों के आवरण के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पा रहे हैं, और "भव भ्रमण" कर रहे हैं। आत्मविकास के लिये हमें यह जान लेना जरूरी है कि सांसारिक आत्मा निमित्त वासी है। इसके उत्थान के लिये तदनुकूल निमित्त -आलम्बन की आवश्यकता रहती है। इसके लिये ज्ञानियों ने देव, गुरु एवं धर्म को सर्वोत्तम निमित्त माना है। इनमें भी देव का स्थान सर्व प्रथम है।

जिन मनीषियों ने अपने कर्मों का नाश कर शुद्ध स्वरूप—वीतरागत्व प्राप्त कर लिया है अथवा यह कहें कि जो परमात्म

पद पर पहुँच गये हैं तथा जिन्होंने भव्यों को सरलता के बल पर अनन्तज्ञान का पथ प्रदर्शन किया है वे महापुरुष 'देव' हैं। ऐसे देवों की भक्ति (वन्दन, पूजन एवं ध्यान) के द्वारा ही हम अपना विकास कर सकते हैं। परमात्मा की भक्ति अपनी आत्मा में वैसे ही गुण प्रकट करती है जो उनमें हैं। यह सुनिश्चित है कि गुणी की भक्ति भक्त को गुणवान बनाती है। सारांश यह है कि अपने स्वरूप को प्राप्त करने में देवाराधना श्रेष्ठ साधन है। जैसा कि हमारे महान् गीतार्थ श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज "श्री आदिनाथ भगवान एवं श्री अजितनाथ प्रभु की स्तुति करते हुए कहते हैं—

"प्रभुजी ने अवलम्बतां निज प्रभुता हो प्रगटे गुणरास।"

—प्रभुजी के अवलम्बन से गुणों के समूह (ज्ञान, दर्शन चारित्र) का उदय होता है अथवा ऐसा कहिये कि प्रभुता प्रकट होती है जो जीव का स्व स्वभाव है।

"अज कुलगत केशरी लहेरे निज पद सिंह निहाल।
तिम प्रभु भक्ते भवि लहे रे, आतम शक्ति संभाल॥'

"जैसे किसी बकरों के झुण्ड में बाल्यकाल से रहता आया सिंह अपने समूह में दूसरे सिंह का प्रवेश करते देखकर अन्य सभी बकरों के साथ भाग खड़ा होता है। संयोगवश यह कहीं अपना प्रतिबिम्ब (परछाई) देखता है और फिर जब अपने झुण्ड में आये हुए सिंह की आकृति देखता है, तब यह विचारने लगता है कि मेरा भी तो इसी के समान रूप है, मैं

भी इसके सदृश ही हूं। इस प्रकार वह अपने वास्तविक स्वरूप को देखकर निर्भय हो जाता है। ठीक इसी तरह भव्य जीव वीतराग देव की भक्ति एवं उनकी मुद्रा का अध्ययन करते हुए, अपनी आत्मशक्ति को प्राप्त करते हैं।" जब वे अपने जीवन पर विचार करते हुए यह सोचते हैं कि एक दिन प्रभु भी हमारे जैसे ही थे और हमारे अन्दर भी वही महान् शक्ति विद्यमान है जो प्रभु में है, तब उन्हें विदित होता है कि हम भी अपनी आत्म शक्ति का विकास कर सकते हैं और हमें भी प्रभु के आदर्शों का अनुकरण करते हुए परम पद की प्राप्ति हो सकती है।

हमारे आराध्यदेव वर्तमान काल में हमारे सम्मुख विद्यमान नहीं हैं, ऐसी अवस्था में उनकी भक्ति करने के लिये, उनके दिव्य स्वरूप को प्राप्त करने के लिये उनका प्रतिरूप 'मूर्त्ति'—ही श्रेष्ठ साधन है—पुष्टावलम्बन है। जिनेश्वर देव की प्रतिमा को शास्त्रकारों ने "चैत्य" शब्द से तथा उनके वन्दन की क्रिया विशेष को "चैत्यवन्दन" शब्द से सम्बोधित किया है।

जब हमारा ध्यान भक्ति की महत्ता की ओर जाता है, तब हमारे हृदय में इसकी सही विधि जानने की उत्कण्ठा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है; जिससे कि हम सब क्रियाएं विधिवत् करके अपना श्रेय साध सकें और अज्ञानवश होने वाली आशातनाओं के दोष से बच सकें। जब तक हम अपनी क्रियाओं के सम्पूर्ण हेतु, स्वरूप, विधि एवं फल आदि को

इसके बिना उन्हें करते रहने तब तक उसका यथार्थ लाभ प्राप्त होना दुष्कर है। किसी भी कार्य की सही विधि का सही ज्ञान कर यदि हम यह कार्य करते हैं तो हमें उसमें सफलता प्राप्त होना असम्भव होता है। इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखकर हमारे पूर्वाचार्यों ने इन पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। उसी को मैं संक्षिप्त रूप में आपके सम्मुख रखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

महापुरुषों ने चैत्यवन्दन, पूजन विधि निमित्त चौबीस द्वारों का निरूपण और साथ ही साथ उनके दो हजार चौहत्तर (२०७४) भेदों द्वारा विषय का स्पष्टीकरण किया है जिनको ज्ञान लेना प्रत्येक उपासक के लिये अति आवश्यक है। केवल उनका ज्ञान ही नहीं अपितु प्रभु की आराधना (वन्दन पूजन) के समय हमें उनका पूरा उपयोग रखना होगा। हमारे यहाँ तो उपयोग में ही धर्म माना गया है, जो हमारी प्रत्येक क्रिया में जागृत रहना चाहिये। हमारा प्रत्येक कार्य विवेक पूर्ण और सतर्कता से होना चाहिये जिससे किसी भी कार्य में जीवादि की विराधना न होने पावे और किसी भी तरह की आशातना भी नहीं हो। परम उपकारी वीतराग प्रभु की भक्ति पूजा उनके आदर्शों को प्राप्त करने के लिये ही की जाती है।

यदि आप ध्यान पूर्वक विचारेंगे, तो आपको स्पष्ट रूप से विदित हो जायगा कि पूजा का हेतु हमारे लिये श्रेयस्कर, स्वरूप महत्वपूर्ण और इसकी विधि वैज्ञानिक एवं यौगिक प्रणालियों

को लिये हुए है, जो हमारे ऐहिक और पारलौकिक जीवन के लिये कल्याणकारी हैं। अतएव इसका फल हमारा निस्तार हो, इसमें कोई सदेह नहीं।

आवश्यकता है इसको समझने और तदनुरूप चलने की। इस पुस्तक में उपर्युक्त चौवीस द्वारों के अतिरिक्त प्रभु के दर्शन, पूजन एवं अन्यान्य आवश्यक विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। मुझे आशा है पाठकगण इससे लाभ उठाकर मेरे इस लघु प्रयास को सार्थक करेंगे।

ताजमल बोथरा



चौबीस द्वार और उनके २०७४ भेद

ज्ञानियों ने जिनालय एवं देवाराधना के विषय को समझाने के लिये चौबीस विषय एवं उनके २०७४ (दो हजार चौहत्तर) भेदों का निरूपण किया है। इन भेद प्रभेदों के द्वारा देवाराधना सम्बन्धी प्रत्येक विषय का स्पष्टीकरण हो जाता है। अत सर्व प्रथम इन्हीं द्वारों के विषय में लिखा जा रहा है।

प्रथम त्रिक द्वार

त्रिक—(तीन तीन का समूह) दस प्रकार के हैं — (१) निसीहि त्रिक (२) प्रणाम त्रिक (३) प्रदक्षिणा त्रिक (४) दिशि त्रिक (५) प्रमार्जना त्रिक (६) प्रणिधान त्रिक (७) पूजा त्रिक (८) अवस्था त्रिक (९) मुद्रा त्रिक और (१०) आलम्बन त्रिक। इस प्रकार इनके तीस भेद होते हैं—

(१) निसीहि त्रिक *—

निसीहि—नैषेधिक, सावद्यप्रवृत्ति—पापकर्म का निषेध।

* निसीहि के तीनों प्रसगों पर तीन तीन वार बोलने की प्रथा भी प्रचलित है। यह मन, वचन एव काययोग की अपेक्षा से समझना चाहिये।

(क) पहली निसीहि का उपयोग जिनालय के द्वार में प्रवेश करते ही होता है। इसमें केवल जिनालय सम्बन्धी कार्यों को छोड़कर शेष घर व्यापार आदि की सभी चिन्ताओं का त्याग किया जाता है।

(ख) दूसरा निसीहि का उपयोग पूजा के लिये जिन मंडप (जहाँ भगवान विराजमान हों) में प्रवेश करते समय होता है। इसमें जिनालय के जीर्णोद्धार एवं भ याल्य व्यवस्था सम्बन्धी चिन्ताओं का त्याग कर प्रभु पूजा (अष्टप्रकारी आदि द्रव्य पूजा) में संलग्न हुआ जाता है।

(ग) तीसरी निसीहि का प्रयोग द्रव्य पूजा समाप्त करने के पश्चात् चैत्यवन्दनादि भाव पूजा करने के समय किया जाता है इसमें सर्व द्रव्य क्रियाओं का त्याग कर भाव पूजा में दत्तचित्त हुआ जाता है।

(२) प्रदक्षिणा (परिक्रमा) त्रिक—

प्रभु की दाहिनी ओर से अर्थात् अपने बायें हाथ की तरफ से प्रभु के चारों ओर तीन प्रदक्षिणा दी जाती हैं। ये तीनों प्रदक्षिणाएं एक ही साथ दी जाती हैं।

प्रदक्षिणा का हेतु प्रभु के प्रति बहुमान का सूचन है। इसे करते समय मन में यह भावना उत्पन्न करना चाहिये कि हे प्रभो! मैं अनादि काल से भव भ्रमण कर रहा हूँ, अब इसका निवारण हो —

काल अनादि अनन्तथी
भव भ्रमणनो नहि पार।
ते भवभ्रमण निवारवा
प्रदक्षिणा त्रण धार॥

(३) प्रणाम (नमन-वन्दन) त्रिक—

*(क) अञ्जलि (दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ सपुट) बद्ध प्रणाम।

इसका उपयोग प्रभु के दर्शन होते ही 'णमो जिणाण' 'णमो भुवन बन्धुणो' आदि उच्चारण करते हुए बद्ध अञ्जलि को ललाट पर ले जाकर किया जाता है।

(ख) अर्द्धावनत प्रणाम—कमर से झुक कर हाथों द्वारा ... स्पर्श करना। इसका उपयोग सभा मडप में प्रवेश करते समय किया जाता है।

(ग) पचाङ्ग (दो जानु—घुटना दो हाथ एव मस्तक) प्रणाम अर्थात् उक्त पांचों अगों को भूमि का स्पर्श कराते हुए नमन करना। इसका उपयोग खमासमणा प्रणिपात के समय होता है।

(४) पूजा (अर्चना) त्रिक—

(क) अंग पूजा—यह पञ्चामृत, जल, चन्दन, पुष्प एव अगलूहण आदि द्वारा की जाती है।

(ख) अग्र पूजा—यह अक्षत, नैवेद्य, फल, अर्घ्य, वस्त्र एव आरती आदि द्वारा की जाती है। नृत्य, वादित्र आदि से

भावना भाना (भावों की वृद्धि करना) भी इसी के अन्तर्गत है।

(ग) भाव पूजा—प्रभु के प्रति भक्ति एवं अपनी आत्मा में शुद्ध भावों का प्रकट करना ही भाव पूजा है। यह 'चैत्य वन्दन' प्रभु कीर्तन, स्तुति एवं स्तवन द्वारा की जाती है।

(५) अवस्था (प्रभु के जीवन की अवस्थाएं) त्रिक—

(क) पिण्डस्थ—जन्मावस्था राज्यावस्था और श्रमणावस्था का केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व का समय।

जन्मावस्था में उपयुक्त वस्तुओं से अङ्ग पूजा और राज्यावस्था में अग्र पूजा की जाती है।

श्रमणावस्था (केवलज्ञान होने के पूर्व की अवस्था) में प्रभु के महान् परिषह सहन एवं उत्कट तप, संयम और धीयादि का विचार करते हुए अपनी अवस्था के साथ तुलना की जाती है।

(ख) पदस्थ केवलज्ञान प्राप्ति के बाद की अवस्था।

इसमें प्रभु के अतिशय से होने वाले आठ प्रातिहार्यादि* वैभवों के स्वरूप को सामने रख कर अरिहन्तों की महिमा का स्मरण किया जाता है।

---

* जिनेश्वर देवों के ८ प्रातिहार्य—(१) अशोक वृक्ष (२) देवों द्वारा की गई फूलों की वर्षा (३) दिव्य ध्वनि (४) देवों द्वारा चामरों का डुलाया जाना (५) अधर सिंहासन (६) भा मण्डल (७) देवों द्वारा बजायी गई दुन्दुभि और (८) छत्र

(ग) रूपातीत—मुक्त हो जाने के बाद सिद्धावस्था। इसमें निरजन निराकार ज्योति स्वरूप अवस्था का ध्यान किया जाता है। इसके द्वारा उपर्युक्त अवस्था का चिन्तन मनन करते हुए भाव पूजा कर अपनी श्रद्धा भक्ति का प्रदर्शन एव अपने भावों की वृद्धि की जाती है।

(६) दिशि (दिशा) त्रिक—

दर्शन पूजन करते समय उर्ध्व, अधो एव तिरछी दिशाओं को छोड कर केवल प्रभु के सम्मुख ही दृष्टि रखी जाती है।

(७) प्रमार्जन (भूमि शोधन) त्रिक—

चरवला अथवा उत्तरीय वस्त्र (उत्तरासग) द्वारा भूमि को तीन बार शुद्ध किया जाता है। इसका उपयोग चैत्यवन्दन आदि के समय बैठने तथा खडे रहने के स्थान का प्रथम दृष्टि पडिलेहन और फिर उत्तरासग आदि से जयणा (विवेक) सहित प्रमार्जन करके किया जाता है।

(८) आलम्बन (अवलम्बन) त्रिक—

(क) वर्णावलम्बन—प्रभु के सन्मुख चैत्यवन्दन सूत्र, स्तुति एव स्तवन आदि जो भी बोले जाय, उन सूत्रों का उच्चारण, शब्द, मात्रा पद एव पदच्छेद आदि की दृष्टि से शुद्ध करना होता हैं।

(ख) अर्थावलम्बन—सूत्र एव स्वतवन आदि जो कुछ भी बोले जाय, उनके अर्थ पर विचार करते हुए उन्हें हृदयगम किया जाता है।

भावना भाना (भावों का वृद्धि करना) भी इसी के अन्तर्गत है।

(ग) भाव पूजा—प्रभु के प्रति भक्ति एव अपनी आत्मा के शुद्ध भावों को प्रकट करना ही भाव पूजा है। यह 'चैत्य वदन' प्रभु कीर्तन, स्तुति एव स्तवन द्वारा की जाती है।

(५) अवस्था (प्रभु के जीवन की अवस्थाए) त्रिक—

(क) पिण्डस्थ—जन्मावस्था, राज्यावस्था और श्रमणावस्था का केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व का समय।

जन्मावस्था म उपर्युक्त वस्तुओं से अङ्ग पूजा और राज्यावस्था में अग्र पूजा की जाती है।

श्रमणावस्था (केवलज्ञान होने के पूर्व की अवस्था) में प्रभु के महान् परिषह सहन एव उत्कट तप, सयम और वीर्यादि का विचार करते हुए अपनी अवस्था के साथ तुलना की जाती है।

(ख) पदस्थ केवलज्ञान प्राप्ति के बाद की अवस्था।

इसमें प्रभु के अतिशय से होने वाले आठ प्रातिहार्यादि* वैभवों के स्वरूप को सामने रख कर अरिहन्तों की महिमा का स्मरण किया जाता है।

---

* जिनेश्वर देवों के ८ प्रातिहार्य—(१) अशोक वृक्ष (२) देवों द्वारा की गई फूलों की वर्षा (३) दिव्य ध्वनि (४) देवों द्वारा चामरों का ढुलाया जाना (५) अधर सिंहासन (६) भा मडल (७) देवों द्वारा बजायी गई दुदुभि और (८) छत्र।

(ग) रूपातीत—मुक्त हो जाने के बाद सिद्धावस्था। इसमें निरंजन निराकार ज्योति स्वरूप अवस्था का ध्यान किया जाता है। इसके द्वारा उपर्युक्त अवस्था का चिंतन-मनन करते हुए भाव पूजा कर अपनी श्रद्धा भक्ति का प्रदर्शन एवं अपने भावों की वृद्धि की जाती है।

(६) दिशि (दिशा) त्रिक—

दर्शन पूजन करते समय उर्ध्व, अधो एवं तिरछी दिशाओं को छोड़ कर केवल प्रभु के सम्मुख ही दृष्टि रखी जाती है।

(७) प्रमार्जन (भूमि शोधन) त्रिक—

चरवला अथवा उत्तरीय वस्त्र (उत्तरासंग) द्वारा भूमि को तीन बार शुद्ध किया जाता है। इसका उपयोग चैत्यवन्दन आदि के समय बैठने तथा खड़े रहने के स्थान का प्रथम दृष्टि पडिलेहन और फिर उत्तरासंग आदि से जयणा (विवेक) सहित प्रमार्जन करके किया जाता है।

(८) आलम्बन (अवलम्बन) त्रिक—

(क) वर्णावलम्बन—प्रभु के सन्मुख चैत्यवन्दन सूत्र, स्तुति एवं स्तवन आदि जो भी बोले जाय, उन सूत्रों का उच्चारण, शब्द, मात्रा, पद एवं पदच्छेद आदि की दृष्टि से शुद्ध करना होता हैं।

(ख) अर्थावलम्बन—सूत्र एवं स्वतवन आदि जो कुछ भी बोले जाय, उनके अर्थ पर विचार करते हुए उन्हें हृदयगम किया जाता है।

भावना भाना (भावों की वृद्धि करना) भी इसी के अन्तर्गत है।

(ग) भाव-पूजा—प्रभु के प्रति भक्ति एवं श्रद्धा आत्मा के शुद्ध भावों को प्रकट करना ही भाव-पूजा है। यह चैत्य वंदन प्रभु कीर्तन, स्तुति एवं स्तवन द्वारा की जाती है।

(५) अवस्था (प्रभु के जीवन की अवस्थाएं) त्रिक—

(क) पिण्डस्थ—जन्मावस्था राज्यावस्था और श्रमणावस्था का केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व का समय।

जन्मावस्था में उपर्युक्त वस्तुओं से अङ्ग पूजा और राज्यावस्था में अग्र पूजा की जाती है।

श्रमणावस्था (केवलज्ञान होने के पूर्व की अवस्था) में प्रभु के महान् परिषह सहन एवं उत्कट तप, संयम और वीर्यादि का विचार करते हुए अपनी अवस्था के साथ तुलना की जाती है।

(ख) पदस्थ केवलज्ञान प्राप्ति के बाद की अवस्था।

इसमें प्रभु के अतिशय से होने वाले आठ प्रातिहार्यादि * वैभवों के स्वरूप का सामने रख कर अरिहन्तों की महिमा का स्मरण किया जाता है।

---

* जिनेश्वर देवों के ८ प्रातिहार्य—(१) अशोक वृक्ष (२) देवों द्वारा की गई फूलों की वर्षा (३) दिव्य ध्वनि (४) देवों द्वारा चामरों का डुलाया जाना (५) अधर सिंहासन (६) भा मंडल (७) देवों द्वारा बजायी गई दुन्दुभि और (८) छत्र

अन्तर रखना एव स्थित भाव से स्थिर रहना चाहिये। खास कर हाथ इक्षुदण्ड की तरह सीधे और घुटने से क्वचित् स्पर्श करते हुए रहने चाहिये।

इसका उपयोग चैत्यवन्दन' में 'अरिहन्त चेइयाण', अनत्थ एव लोगस्स आदि बोलने तथा इरियावही' व स्तुति आदि बोलते समय और कायोत्सर्ग करते समय करने का विधान है।

(ग) मुक्ताशुक्ति—(सीपाकार मुद्रा) दोनों हाथों को सम स्थिति मे रख कर हाथों की हथेलियों एव अगुलियों को बराबर मिलाना चाहिये, ताकि अन्तर न रहे और इस तरह मिलान करने के बाद हथेलियों को गर्भित आकार में बना लेना अर्थात् भीतर से पोला रख कर हथेलियों को कमल के डोडे की तरह फुला लेना। ऐसा करने से अगुलियों में भी पोरों तक बीच में कुछ अन्तर हो जायगा और ऊपर की पोरें मिल जायगी साथ ही हथेलियों के बीच का भाग कछुए की पीठ के समान ऊपर उठ आयेगा। यही मुक्ताशुक्ति मुद्रा है।१

इसका उपयोग प्रणिधान (जावन्ति चेइआई, जावत केविसाहू और जयवीयराय) त्रिक करते समय किया जाता है।

(१०) प्रणिधान त्रिक—

प्रणिधान—नीचे के सूत्रों को मन, वचन एव काय योग की [illegible] बोलना।

[illegible] पुरुष वर्ग ललाट पर रख कर एव [illegible] रख कर करें।

(क) चेइय वदणा प्रणिधान—जावंति चेइआई से लेकर इह संतोतत्थ संताइ पर्यन्त।

(ख) मुनिवन्दन प्रणिधान—जावंत केविसाहू से लेकर तिविहेण तिदंड विरयाण।

(ग) प्रार्थना प्रणिधान—जयवीयराय से लेकर आभवम् खंडा पर्यन्त।

दूसरा अभिगम द्वार

अभिगम—सम्मुख गमन करना अर्थात् तीर्थंकर आदि देवों के वन्दन के निमित्त गमन करना। इसके पांच प्रकार हैं —

(१) सचित्त वस्तुओं का त्याग—इसमें पूजा में काम आने वाली जल, पुष्प एव फलादि वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य सभी अपने भोग में आने वाली सचित वस्तुओं का त्याग किया जाता है।

(२) अचित वस्तुओं का अंगीकार—इसमें देश काल और क्षेत्रानुकूल उत्तम वेश भूषा का अंगीकरण और राजमुकुट एव चामर आदि अभिमान सूचक अचित वस्तुओं का त्या[illegible] किया जाता है।

(३) मन का एकीकरण—इसमें जब तक जिनालय में [illegible] तब तक मन के संकल्प विकल्पों का त्याग कर चित्त [illegible] एकाग्र रखा जाता है।

(४) उत्तरीय वस्त्र धारण—इसमें एक अखण्ड वस्त्र [illegible] उत्तरासग किया जाता है। यह जनेऊ की भांति धा[illegible]

किया जाता है। इसका उपयोग वन्दन करते समय बैठने के पूर्व इसके एक छोर से तीन बार भूमि के प्रमार्जन करने में और पूजा एव स्तुति आदि करते समय मुह के सम्मुख रखने में होता है।

(५) अञ्जलिबद्ध नमस्कार—इसमें जिनेश्वर भगवान के दर्शन होते ही 'णमो जिणाण' 'णमो भुवन बन्धुणो' आदि शब्दों का उच्चारण करते हुए बद्धअञ्जलि को ललाट पर रख कर नमस्कार किया जाता है।

तीसरा दिसि (दिशा) द्वार

दर्शन, वन्दन एव पूजादि करते समय पुरुषों को प्रभु की दाहिनी दिशा में और स्त्रियों को बायीं दिशा में रहने का विधान है। अतएव बीच में रहना उचित नहीं है। इस द्वार के उपयोग से प्रधान लाभ तो यह है कि दूसरे दर्शन पूजन करने वालों को असुविधा नहीं होती तथा स्त्री पुरुषों का परस्पर लगाव नहीं होता। साथ ही साथ मर्यादा का भी पालन होता है।

चौथा अवग्रह (दूरी) द्वार

अवग्रह द्वार के तीन भेद हैं —

(१) जघन्य अवग्रह—प्रभु बिम्ब से कम से कम ६ हाथ दूर रह कर चैत्यवन्दन करना।

(२) मध्यम अवग्रह—जघन्य और उत्कृष्ट के बीच की दूरी में रह कर चैत्यवन्दन करना।

(नोट—घर देहरे एव छोटे मन्दिर आदि में जहा जगह की विशालता नहीं हो थोड़ी दूरी से भी चैत्यवन्दनादि करने का विधान है। कम से कम आधे हाथ की दूरी तो अवश्य रहनी चाहिये)

(३) उत्कृष्ट अवग्रह -प्रभु बिम्ब से अधिक से अधिक ६० हाथ को दूरी से चैत्यवन्दनादि करना।

पाचवा चैत्यवन्दन द्वार

चैत्यवन्दन—जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा एव तीर्थ आदि को नमन, वन्दन करने की क्रिया विशेष। इसके तीन भेद हैं —

(१) जघन्य चैत्यवन्दन एक नमस्कार या श्लोक आदि द्वारा अथवा णमो जिणाण आदि उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर या प्रचलित चैत्यवन्दन की क्रिया करके वन्दन करना।

(२) मध्यम चैत्यवन्दन—दो एक स्तुति एव नमुत्थुण पाठ कर अरिहत चेइयाण पूर्वक अनुक्रम से चार स्तुतिया (थुइ) बोल कर किया जाता है।

उत्कृष्ट चैत्यवन्दन- पाँच बार नमुत्थुण सहित आठ स्तुतिया एव स्तवन और प्रणिधान त्रय करके किया जाता है।

छठा प्रणिपात द्वार

'इच्छामि खमासमणो' सूत्र बोलते हुए दो घुटने (जानु), दो हाथ एव मस्तक—इन पाँचों अगों को नमा कर भूमि स्पर्श करना।

सातवा नमस्कार द्वार

नमस्कार—छन्दमय स्तुति द्वारा नमस्कार। इसके तीन भेद हैं —

(१) जघन्य नमस्कार—एक श्लोक द्वारा।

(२) मध्यम नमस्कार—दो से लेकर एक सौ सात श्लोकों द्वारा।

(३) उत्कृष्ट नमस्कार—एक सौ आठ श्लोकों द्वारा।

नोट –उक्त श्लोक अत्यन्त गहन अर्थ एव भावयुक्त होने चाहिये।

आठवाँ नववाँ और दशवाँ—द्वार*

देव वन्दन में निम्नलिखित नव सूत्र आते हैं। इन सूत्रों के सर्व अक्षर, पद और सम्पदाओं का उल्लेख इन तीन द्वारों में किया गया है। साथ ही इसका हेतु भी बतलाया गया है।

सूत्र	अक्षर	पद	सम्पदा
(१) नमस्कार महामन्त्र (पञ्च मगल महाश्रुत स्कन्ध)	६८	९ -	८
(२) प्रणिपात (इच्छामि खमासमणो)	२८ -		
(३) इरियावहिय (प्रतिक्रमण श्रुत स्कन्ध)	१९९	३२ -	८
(४) शक्र स्तव (नमोत्थुण)	२९७	३३ -	९

* पूर्वाचार्यों ने किसी विशेष कारण से प्रणिपात एव प्रणिधान सूत्र के पद एव सम्पदाओं की गणना नहीं की है। ऐसा भाष्य की अवचूरि में उल्लेख है।

(५) चैत्यस्तव (अरिहन्त चेईयाणं)	२७१	४३	१
(६) नामस्तव (लोगस्स)	२६०	२८	२८
(७) श्रुत स्तव (पुक्खरवरदीवड्ढे)	२१६	१६	१६
(८) सिद्ध स्तव (सिद्धाण बुद्धाण)	१९८	२०	४
(९) प्रणिधान त्रिक			
(जावंति जावंत जयवीयराय)	१५२		
	१६४७		

ग्यारहवाँ, बारहवाँ द्वार

ग्यारहवें द्वार में बताया गया है कि शक्रस्तव, चैत्यस्तव नामस्तव श्रुतस्तव और सिद्धस्तव उक्त पाँच दण्डक हैं। बारहवें द्वार में इन पाच दण्डकों के १२ अधिकार एवं उनके धुरपद* तथा किस किस अधिकार में किन किन को वन्दन किया गया है आदि विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

तेरहवा द्वार

इसमें बतलाया गया है कि अरिहन्त, निर्ग्रन्थ, सर्वज्ञ प्रणीत प्रवचन और सिद्ध भगवान ये चारों मांगलिक सर्वोत्तम एवं शरण ग्रहण करने योग्य होने के कारण वन्दनीय हैं।

चौदहवाँ द्वार

इसमें यह बतलाया गया है कि समकित दृष्टि देव देवियाँ स्मरणीय हैं।

*धुरपद आदि के भेद व सम्बन्ध में 'चैत्यवन्दन भाष्य' आदि से जान सकते हैं।

पन्द्रहवाँ द्वार

इसमें बतलाया गया है कि नाम स्थापना द्रव्य और भाव—उक्त चारों निक्षेपों की अपेक्षा से जिन भगवान वन्दनीय हैं। जैसे —

(१) नाम जिन से ऋषभादिक जिनों के नाम (२) स्थापना जिन से जिनेश्वर भगवान की शाश्वती अशाश्वती प्रतिमाएँ और चरण (३) द्रव्य जिन से अतीत अनागत और वर्तमान जिनों के जीव तथा (४) भाव जिन से समवसरण में साक्षात् विराजित तीर्थंकर भगवान।

सोलहवाँ द्वार

इसमें चार स्तुतियों (थुई) के सम्बन्ध में बतलाया गया है। जिसमें पहली स्तुति अमुक एक जिन सम्बन्धी दूसरी सर्व जिन सम्बन्धी, तीसरी श्रुतज्ञान (आगम आदि) सम्बन्धी और चौथी समकित दृष्टि देव देवियों (शासन एव अधिष्ठापक देव) को स्मरण करने सम्बन्धी है।

सत्रहवाँ द्वार

इसमें आठ निमित्तों का वर्णन है और बतलाया गया है —

चैत्यवन्दन करते हुए प्रथम गमनागमन आदि से हुए पाप क्षय निमित्त—'इरियावही' की जाती है, फिर अरिहन्त चेइयाण दण्डक द्वारा वन्दन, पूजन, सत्कार, सम्मान बोधिलाभ एव मोक्ष के लिये कायोत्सर्ग और अन्त में शासन

(अधिष्ठायक) देव के स्मरण निमित्त कायोत्सर्ग किया जाता है।

अठारहवाँ द्वार

इसमें कायोत्सर्ग के बारह हेतुओं का वर्णन किया गया है। (१) तस्स उत्तरी करणेण (आत्मा को विशेष उन्नत करने के निमित्त पहले लगे पापों की आलोचना के लिये (२) पायच्छित करणेण—प्रायश्चित—यथा योग्य दण्डण हेतु (३) विसोही करणेण विशेष शुद्धि करने के हेतु (४) विसल्ली करणेण शल्य रहित करने के हेतु (५) सद्धाए—श्रद्धापूर्वक (६) मेहाए—मेधापूर्वक (७) धीईए धृतिपूर्वक (८) धारणाए—धारणापूर्वक (६) अणुप्पेहाए—अनुप्रेक्षापूर्वक तथा (१० १२) वेयावच्चगराण, सत्तिगराण, सम्मदिट्ठिसमाहिगराण—तीर्थरूप श्री संघ की वैयावच्च करने वाले, सब स्थानों में शान्ति करने वाले और सम्यक्त्वी जीवों को समाधि पहुचाने वाले देव-देवियों को स्मरण करने के हेतु कायोत्सर्ग किया जाता है।

उन्नीसवां द्वार

इसमें कायोत्सर्ग में जो १६ आगार रखे जाते हैं उनका उल्लेख है। जिसे 'अन्नत्थ ऊससिएण' सूत्र से समझ लेना चाहिये।

बीसवां द्वार

इसमें बतलाया गया है कि कायोत्सर्ग करते समय मुद्रा त्रिक में बताये हुए नियमानुसार खड़े रहना चाहिये और निम्नलिखित

इक्कीस दूषण नहीं लगने पावें, इसका ध्यान रखना चाहिये। (१) घोटक दोष—घोड़े की तरह पैर ऊंचा नीचा या आगे पीछे करना (२) लतादोष—लता की तरह शरीर को हिलाना (३) स्तम्भादि दोष—स्तम्भ आदि का सहारा लेना (४) माल दोष—छत से माथा सटा कर खड़ा रहना (५) उद्धी दोष—बैलगाड़ी के धुड़ की तरह पैर को मिला कर खड़ा रहना (६) निगड दोष—बेड़ी में डाले हुए पैरों को फैला कर रखने की भांति पैरों को रखना (७) शबरी दोष—नग्न भीलनी के जैसे अपने गुह्यस्थान पर हाथ रखना (८) खलिण दोष घोड़े की लगाम की तरह रजोहरण पकड़ कर रखना (९) वधू दोष—नव विवाहित स्त्री की तरह सिर को झुका कर रखना (१०) लम्बुत्तर दोष—नाभि के ऊपर एवं घुटनों से नीचे तक वस्त्र रखना१ (११) स्तन दोष—मच्छर आदि के भय से एव लज्जावश वक्षस्थल (छाती) को ढँक कर रखना२ (१२) संयति दोष—शीत आदि के भय से स्कन्धों को ढँक कर रखना (१३) भमुहंगुली दोष—नमस्कार मन्त्र अथवा लोगस्स की गणना करते समय चक्षुओं के भौंहों एवं अंगुलियों को चलाते रहना (१४) वायस दोष—कायोत्सर्ग करते समय कौवे की तरह अपने चक्षुओं को फिराते रहना (१५) कपित्थ दोष—वस्त्र बिगड़ने के भय से उसको सिकोड़ कर रखना (१६) यक्षावेशित

१—यह साधुओं की अपेक्षा से कहा गया है।
२—यह पुरुषों की अपेक्षा से कहा गया है।

दोष—मूताशालिन की तरह सिर को धुनते रहना (१७) मूक दोष—मूक मनुष्य की तरह गुनगुनाते रहना (१८) वारुणी दोष—मद्य पीये हुए व्यक्ति की भांति बड़बड़ाते रहना (१९) प्रेक्ष्य दोष—बन्दर की भांति ओष्ठों को हिलाना एवं इधर उधर दृष्टि दौड़ाते रहना।

(नोट—कायोत्सर्ग करते समय उपर्युक्त १९ दोषों का अवश्य छोड़ देना चाहिये। इसमें १०, ११ एवं १२ उक्त तीन दोष साध्वियों को नहीं लगते हैं इसी तरह श्राविकाओं को भी इन तीनों दोषों के अतिरिक्त वधू नामक नवां दोष भी नहीं लगता है)

इक्कीसवां द्वार

इसमें कायोत्सर्ग के परिमाण का वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि इरियावही सम्बन्धी कायोत्सर्ग में एक लोगस्स चन्देसुनिम्मलयरा तक (२५ श्वासोश्वास प्रमाण) और शेष (दूसरे अधिष्ठायक आदि देवों के लिये) में एक नमस्कार मन्त्र का (८ श्वासोश्वास प्रमाण) कायोत्सर्ग करने का विधान है।

बाईसवां द्वार

इसमें स्तवन* के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि यह

*उपर्युक्त भावों को व्यक्त करने वाले स्तवन होने चाहिये, प्रतिक्रमण आदि में बोले जाने वाले नहीं। इनमें भी कुछ स्तवन ऐसे हैं जो साधुओं एवं स्त्रियों के लिये वर्जित हैं; जिनका ध्यान रखना भी आवश्यक है।

भगवान के गुणगान एव उनकी महिमा को व्यक्त करने वाला ज्ञान, भक्ति एव वैराग्य भावना की वृद्धि करने वाला तथा अति उदार-गम्भीर अर्थ वाला होना चाहिये। स्तवन रागरागिणी एव उल्लसित भावों के साथ मधुर स्वर में बोला जाना चाहिये।

तेईसवाँ द्वार

इसमें यह बतलाया गया है कि चैत्यवन्दन नित्य नियम से कितनी बार करना चाहिये। मुनि एव दोनों समय प्रतिक्रमण करने वाले श्रावकों के लिये अहोरात्रि (दिन भर) में निम्न लिखित ७ बार चैत्यवन्दन करने का विधान है।

प्रथम—प्रात काल पच्चखाण करने के पश्चात् 'विशाल लोचन' कह कर।

दूसरा —जिनालय में जाकर प्रभु मुद्रा के सम्मुख।

तीसरा—पच्चखाण पारने के पूर्व।

चौथा—आहार पान करने के पश्चात्।

पाचवाँ—सन्ध्या समय छ आवश्यक पूर्ण होने के पश्चात् 'नमोस्तुवर्द्धमानाय' द्वारा।

छटवाँ - सथारा पोरसी बोलते समय 'चउक्कसाय' कहकर।

सातवाँ—सोकर उठने के पश्चात् 'जगचिंतामणि जगनाह' बोलकर।

एक समय प्रतिक्रमण करने वाले गृहस्थ को पाँच या पत्र जो प्रतिक्रमण नहीं करते हैं, उनके लिये प्रात, मध्या एवं सन्ध्या समय चैत्यवन्दन करने का विधान है।

चौबीसवा द्वार

इसमें जिन मंदिर सम्बन्धी आशातनाओं का वर्णन है। आशातना — आ (मग) — शातना (ज्ञान, दर्शन एव चरित्र रूप लाय) अर्थात् जिस कार्य से ज्ञान दर्शन, चारित्र की क्षति हो, उसे आशातना कहते हैं।

महापुरुषों ने जिनालय में इससे बचने के लिये इसके उत्कृष्ट मध्यम एव जघन्य—उक्त तीन भेद करके यह बतलाया है कि प्रत्येक उपासक का कर्त्तव्य है कि वह उत्कृष्ट रूप से निम्न लिखित ८४ आशातनाओं को जिन मंदिर में नहीं होने दे। यदि इतनी सावधानी नहीं रख सके तो मध्यम रूप से ४२ आशातनाओं से अवश्य बचे और इतना भी नहीं हो सके तो जघन्य रूप से १० आशातनाओं से तो अवश्य बचना ही चाहिये।

उत्कृष्ट आशातनाएं निम्न लिखित ८४ प्रकार की हैं। १—श्लेष्म एव थूक आदि डालना, २—जुआ एव तास आदि खेलना, ३—कलह करना ४—धनुष आदि कलाओं का अभ्यास करना ५—दातुन कुल्ला करना, ६—पान खाना ७—पान का पीक डालना ८—गाली आदि कुवाक्य बोलना, ९—शौच, पेशाब आदि करना, १०—शरीर

धोना, ११—केश सवारना, १२—नख काटना या फेंकना, १३—थूक गिराना, १४—सूँखडी (खाद्य पदार्थ) आदि का सेवन करना, १५—फोडे आदि की त्वचा उतारना, १६—औषधि खाकर पित्त गिराना, १७—वमन करना, १८—दाँत गिराना, १६—हाथ पैर का मैल गिराना, २०—घोडा आदि बाँधना, २१—दांत का मैल गिराना, २२—आंख का मैल गिराना, २३—नाखून का मैल गिराना, २४—गाल का मैल उतारना, २५—नाक का मैल गिराना, २६—शरीर का मैल गिराना, २७—सिर का मैल गिराना, २८—भूत आदि की मंत्र विद्याओं की साधना करना या राज्य सम्बन्धी विचार करना, २६—कान का मैल गिराना, ३०—विवाह सम्बन्धी बातचीत करना, ३१—व्यापार सम्बन्धी हिसाब किताब करना, ३२—राज्य सम्बन्धी वोट देना, ३३—घर के गहने आदि रखना, ३४—विपरीत आसन से अथवा आसन आदि बिछाकर बैठना, ३५—गोबर के कन्डे (छाने) आदि थोपना या संग्रह करना, ३६—बडी आदि बनाना या सुखाना ३७—वस्त्र सुखाना, ३८—दाल पीसना या दलना, ३६—पापड बेलना या सुखाना, ४०—राज्य के भय से छिपना, ४१—पुत्र आदि के मरने पर रोना ४२—राज्य, देश, स्त्री तथा भोजन सम्बन्धी बातचीत करना, ४३—गहने या शस्त्र बनाना, ४४—गाय भैंस, बैल आदि रखना, ४५—सर्दी को दूर करने के लिये आग तापना, ४६—धान्यादि पकाना, ४७—रुपया एवं मोहर आदि

की परीक्षा करना, ४८—निसाहि त्रिक को विधिपूर्वक नहीं करना, ४६—छत्र धारण करना, ५०—जूते एव मौजे आदि पहनना, ५१—शस्त्र धारण करना, ५२—चामर आदि रखना, ५३—मन को एकाग्र न रखना ५४—तेल मालिश करना ५५—शरीर के ऊपर धारण किये हुए फूलों को नहीं त्यागना, ५६—हार अगूठी कुडल आदि आभूषणों को उतार कर आना ५७—प्रभु को देखकर हाथ नहीं जोड़ना, ५८—उत्तरीय वस्त्र धारण न करना, ५९—मुकुट धारण करना ६०—सिर पर वस्त्र लपेटे रहना, ६१—फूल का सेहरा रखना, ६२—नारियल आदि का छिलका डालना, ६३—गेंद खेलना, ६४—अन्य को प्रणाम करना ६५—भाडों की तरह कुचेष्टा करना, ६६—तू तू शब्द का प्रयोग, ६७—उलाहना देना, ६८—सग्राम करना, ६६—माथे के बाल सुखाना, ७०—पालथी (पाल्थी) लगाकर बैठना, ७१—पावड़ी पहनना ७२—शरीर आदि धोकर कीचड करना, ७३—शरीर दबाना ७४—पाव फैलाना, ७५—शरीर की धूल झाड़ना, ७६—मैथुन करना, ७७—जुए, लीख आदि गिराना, ७८—भोजन करना ७९—गुह्य (गुप्त) अग ढक कर न बैठना, ८०—वैद्य का काम करना, ८१—क्रय विक्रय करना, ८२—शय्या पर सोना, ८३—पीने के लिये जल रखना, ८४—स्नान के लिये जगह बनाना, चौमासे में पानी सग्रह करना एव पानी का पात्र रखना।

मध्यम एवं जघन्य आशातनाएं इस प्रकार हैं —

४२ मध्यम आशातनाएं हैं, इनमें प्रथम दस आशातनाएं ही जघन्य आशातनाएं हैं। १—मन्दिर में पान सुपारी आदि मुख शुद्धि की वस्तुएं रखना, २—पानी आदि पेय पान करना, ३—भोजन करना, ४—जूता, मौजा आदि पहनना, ५—रति क्रीडा करना ६—निद्रा (नींद) लेना, ७—कफ, थूक आदि गिराना, ८—पेशाब करना, ९—शौच जाना, १०—तास, चौपड एवं जुआ आदि खेलना, ११—जुआ आदि खेलते हुए को देखना, १२—पालथी मारना, १३—पांव फैलाना, १४—परस्पर वादविवाद करना १५—हँसी करना, १६—अभिमान करना, १७—सिंहासन का प्रयोग करना, १८—बाल सवारना, १९—छत्र धारण करना २०—तलवार रखना, २१—मुकुट धारण करना, २२—चामर का प्रयोग करना, २३—किसी कारणवश संघ या अन्य व्यक्ति के निमित्त अनशन करना या धरना देना २४—हास्य विलास करना २५—अन्य पुरुष के साथ प्रसंग करना, २६—मलीन शरीर रखना, २७—पूजन करते समय मुखकोष नहीं रखना, २८—मलीन वस्त्र रखना, २९—विधिपूर्वक पूजन न करना, ३०—मन को स्थिर न रखना, ३१—सचित्त द्रव्य (वस्तु) रखना ३२—उत्तरीय वस्त्र न रखना, ३३—अंजलि नहीं करना, ३४—पूजा के प्रयोग में आने वाले उपकरणों को अपवित्र रखना, ३५—अशुद्ध फूल चढाना, ३६—अनादर करना,

३७—जिनेश्वर के विराधी का निरादर न करना ३८—चैत्य द्रव्य भक्षण करना, ३९—चैत्य-द्रव्य की उपेक्षा करना ४०—शक्ति रहने पर भी दर्शन वन्दन एवं पूजन में आलस्य करना ४१—देव द्रव्य को भक्षण करने वाले से मित्रता करना ४२—देव-द्रव्य भक्षण करने वाले को उच्च स्थान देना या उसकी बात मानना।

उपासकों के लिये आवश्यक बातें

(१) उपासकों को समझ लेना चाहिये कि 'जयणा धम्मस्स जननी' हमारे प्रत्येक धर्मानुष्ठान में जयणा—यतना का लक्ष्य रहना सर्व प्रथम आवश्यक है। इसलिये हम जो भी कार्य करें जयणा सहित करें। साथ ही जो कुछ करें समझ पूर्वक करें। यह सोचें कि हम यह कार्य क्यों कर रहे हैं और इसका क्या उद्देश्य है?

(२) उपासना में मन का स्वस्थ रहना नितान्त आवश्यक है और इसका स्वच्छता के साथ गहरा सम्बन्ध है। अत स्नानादि से स्वच्छ होकर ही पूजा* करनी चाहिये।

---

*जिन महानुभावों के शरीर में फोडा, फुन्सी आदि से जब तक मवाद आता हो उनके लिये तबतक एव ऋतुवती स्त्रियों के लिये पांच दिन पर्यन्त अंग पूजा करना निषिद्ध है। इसी तरह सूतक वालों के लिये भी नियम हैं।

(२) स्नान करने का जल शुद्ध एवं छाना हुआ होना अति आवश्यक है। इसे परिमित परिमाण में ले, पूर्व दिशा में बैठ कर जयणा (विवेक) सहित स्नान करना चाहिये। साथ ही इस बात का पूरी तरह ध्यान रखना चाहिये कि जलादि के एकत्र होने से लाल्न फूलन एवं अन्य जीवों की उत्पत्ति न हो। मन्दिर की सीमा में स्नान करने वालों को वहां साबुन, तैल आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। आजकल देखा जाता है कि लोग पानी के परिमाण एवं उपयुक्त बातों का ध्यान रखना भूल से गये हैं जब कि जीव जन्तु की रक्षा का ध्यान रखना सर्व प्रथम आवश्यक है।

स्नान करने के पश्चात् अपने अंगोपांगों को तौलिये आदि से अच्छी तरह पोंछे और फिर कमली आदि पहन कर पैरों का जल सुखा कर ही जमीन पर पांव रखे ताकि भीगे हुए पैरों के संसर्ग से जीव विराधना न हो और पैर धूल आदि से गन्दे भी न हों। तत्पश्चात् धुले हुए स्वच्छ वस्त्रों को धारण करें।* वस्त्र मैले, गन्दे एवं दुर्गन्धयुक्त और फटे हुए नहीं होने चाहिये। ऐसा करने से आपके स्वास्थ्य को हानि

*वस्त्रों को प्रतिदिन धोकर ही काम में लेना चाहिये। पूजा के उपयुक्त वस्त्रों को धारण किये बिना कम्बली आदि पहन कर जिन मंडप में प्रवेश नहीं करना चाहिये। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि पूजा आदि के कपड़े भगवान की दृष्टि के सामने नहीं पहने जाय।

पहुँचती है तथा परमात्मा के प्रति अनादर सूचित होता है एव प्रभु की भक्ति में कमी मालूम होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सब तरह से स्वच्छ होकर ही जिन मडप में प्रवेश करना चाहिये। शरीर की स्वच्छता के साथ मन का अत्यधिक सम्बन्ध है।

(४) जिनेश्वर भगवान की अग पूजा, जल पूजा से प्रारम्भ होती है। यह जल पूजा* उस समय करनी चाहिये जब कि सूर्य का प्रकाश भली भाँति फैल जाय ताकि रात्रि के समय जो जीव आ गये हों वे अपने अपने स्थान पर चले जाय या उन्हें मोर पखी से हटाया जा सके। अन्यथा निर्दिष्ट समय से पूर्व जल पूजा करने से जीवों की विराधना हो सकती है और ऐसा करने से तीर्थंकर भगवान की आज्ञा भग होती है।

(५) जिन बिम्ब का प्रक्षालन करने के पहले गत दिवस के लगे हुए केशर एव पुष्पादि द्रव्यों को दूर कर देना चाहिये। क्योंकि, सुगन्ध होने के कारण उनमें त्रस जीवो की उत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है। इसके बाद मोर पखी से प्रभु की मूर्ति को ध्यान पूर्वक साफ कर फिर

*शास्त्रों में दो घडी दिन चढ जाने के पश्चात् जल पूजा करने का विधान है। वास्तव में अष्ट प्रकारी पूजा करने का मुख्य समय ही मध्याह्न काल (दूसरा प्रहर) बतलाया गया है।

के यथार्थ महत्त्व का नहीं समझने के कारण इसमें कुछ उपेक्षा सी नजर आने लगती है, किन्तु इसे त्रिक आदि का उपयोग रखते हुए बड़े ही धैर्य एवं ध्यान से करना चाहिये। वास्तव में यही तो पूजा का सार है और भावशुद्धि के लिये ही द्रव्य पूजा का महत्त्व है। अर्थात् भावों को उत्पन्न एवं तीव्र करने के लिये ही द्रव्य पूजा की जाती है।

(१४) रात्रि में भगवान् की आंगी एवं भावना आदि के समय देखा जाता है कि अनेक दीपक जलाये जाते हैं और इन दीपकों से भी तेज रोशनी के बल्ब जलाये जाते हैं, जिनकी गर्मी असह्य होती है तथा इससे चौमासा आदि के दिनों में जीव विराधना होती है। ऐसी आशातनाओं से बचना चाहिये।

(१५) कभी कभी लोग जिन मन्दिर के भीतर बैठ कर मनगढ़न्त तथा इधर उधर की चर्चा करते हुए दिखाई पड़ते हैं किन्तु, यह प्रत्यक्ष आशातना है। यदि धर्मचर्चा करनी हो, नमस्कार मन्त्रादि का जाप जप करना हो या पूजा का पठन पाठन (भणानी) हो अथवा किसी प्रशस्त हेतु से ठहरने की आवश्यकता हो, तभी मन्दिर में ठहरना उचित है, अन्यथा निरर्थक अधिक देर तक ठहरना आशातना का कारण बन जाता है।

(१६) कई महानुभाव [illegible] अपना [illegible] समय
देते हैं। यह [illegible] अनेक
जागृत [illegible] र्थ

(११) इसके अनन्तर जिन मंडप के बाहर बैठ कर अक्षत फल और नैवेद्य ये तीन पूजाएं एक साथ की जाती हैं। पूजा करने वाले इस समय बोलते हैं कि "अक्षत शुद्ध धराइसें जे पूजे जिनराय" परन्तु जिन चावलों से स्वस्तिक करते हैं, उनकी शुद्धता पर ध्यान नहीं देते। कभी कभी चावलों पर इलियाएं एवं लट आदि जन्तु देखने में आते हैं। इससे जीवों की विराधना होती है। चढ़ाने के फल भी साधारण और नैवेद्य पूजा में खाना धारे (मखाने) एवं बतासे आदि व्यवहार में लाते हैं। प्रतिदिन के लिये तो फिर भी कोई बात नहीं है किन्तु पर्वों के अवसर पर एवं घर में जब कभी भी मिष्टान्न आदि तैयार हो उस समय तो हमें वे ही चढ़ाने उचित हैं। हमारे लिये इसका उपयोग रखना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा इससे हमारी भक्ति में न्यूनता एवं अपने इष्टदेव के प्रति बहुमान में कमी प्रकट होता है। इसके बाद चामर एवं पंखा आदि प्रातिहार्यों द्वारा भक्ति करनी चाहिये।

(१२) शास्त्रीय क्रमानुसार अङ्ग पूजा करते समय प्रथम श्री मूल नायक भगवान, तत्पश्चात् अन्य भगवान् और फिर क्रमश: गणधर देव आदि सिद्ध परमात्मा, गुरु एवं अन्त में यक्षादि की पूजा करनी चाहिये। नवपद आदि की पूजा बीच में भी की जा सकती है।

(१३) द्रव्य पूजा के पश्चात् भाव पूजा का ... है। द्रव्य पूजा में अधिक ... हो

के यथार्थ महत्त्व को नहीं समझने के कारण इसमें कुछ उपेक्षा सी नजर आने लगती है, किन्तु इसे त्रिक आदि का उपयोग रखते हुए बड़े ही धैर्य एव ध्यान से करना चाहिये। वास्तव में यही तो पूजा का सार है और भाववृद्धि के लिये ही द्रव्य पूजा का महत्त्व है। अर्थात् भावों को उत्पन्न एव तीव्र करने के लिये ही द्रव्य पूजा की जाती हैं।

(१४) रात्रि में भगवान् की आंगी एव भावना आदि के समय देखा जाता है कि अनेक दीपक जलाये जाते हैं और इन दीपकों से भी तेज रोशनी के बल्ब जलाये जाते हैं, जिनकी गर्मी असह्य होती है तथा इससे चौमासा आदि के दिनों में जीव विराधना होती है। ऐसी आशातनाओं से बचना चाहिये।

(१५) कभी कभी लोग जिन मन्दिर के भीतर बैठ कर मनगढन्त तथा इधर उधर की चर्चा करते हुए दिखाई पडते हैं किन्तु, यह प्रत्यक्ष आशातना है। यदि धर्मचर्चा करनी हो, नमस्कार मन्त्रादि का जाप जप करना हो या पूजा का पठन पाठन (भणानी) हो अथवा किसी प्रशस्त हेतु से ठहरने की आवश्यकता हो, तभी मन्दिर में ठहरना उचित है, अन्यथा निरर्थक अधिक देर तक ठहरना आशातना का कारण बन जाता है।

(१६) कई महानुभाव पूजाओं में अपना बहुत सा समय देते हैं। यह तो अति प्रशसनीय है, पर साथ में हमारा विवेक जागृत रहना चाहिये। हम जो भी बोलें या पढें उसके अर्थ

के यथार्थ महत्त्व को नहीं समझने के कारण इसमें कुछ उपेक्षा सी नजर आने लगती है, किन्तु इसे त्रिक आदि का उपयोग रखते हुए बड़े ही धैर्य एवं ध्यान से करना चाहिये। वास्तव में यही तो पूजा का सार है और भावशुद्धि के लिये ही द्रव्य पूजा का महत्त्व है। अर्थात् भावों को उत्पन्न एवं तीव्र करने के लिये ही द्रव्य पूजा की जाती हैं।

(१४) रात्रि में भगवान् की आंगी एवं भावना आदि के समय देखा जाता है कि अनेक दीपक जलाये जाते हैं और इन दीपकों से भी तेज रोशनी के बल्ब जलाये जाते हैं, जिनकी गर्मी असह्य होती है तथा इससे चौमासा आदि के दिनों में जीव विराधना होती है। ऐसी आशातनाओं से बचना चाहिये।

(१५) कभी कभी लोग जिन मन्दिर के भीतर बैठ कर गपशप तथा इधर उधर की चर्चा करते हुए दिखाई पड़ते हैं किन्तु, यह प्रत्यक्ष आशातना है। यदि धर्मचर्चा करनी हो, नमस्कार मन्त्रादि का जाप जप करना हो या पूजा का पठन पाठन (भणाना) हो अथवा किसी प्रशस्त हेतु से ठहरने की आवश्यकता हो, तभी मन्दिर में ठहरना उचित है, अन्यथा निरर्थक अधिक देर तक ठहरना आशातना का कारण बन जाता है।

(१६) कई महानुभाव पूजाओं में अपना बहुत सा समय देते हैं। यह तो अति प्रशंसनीय है, पर साथ में हमारा विवेक होना चाहिये। हम जो भी बोलें या पढ़ें उसके अर्थ

का समझें। थूके मुँह नहीं बोलें * मधुर स्वर एवं राग रागिनी से बोलें तथा जो सज्जन अच्छी तरह बोलते हों उनका अनुसरण करें, ताकि सबके हृदय में भावों की वृद्धि एवं आनन्द हो।

(१७) प्रत्येक जैनी का कर्त्तव्य है कि वह सर्व समय नीचे एवं सामने देखता हुआ इस तरह चले, जिससे जीवादि की विराधना न हो। विशेष कर देवस्थानादि में तो इसका पूरा उपयोग रखना आवश्यक है। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश व्यक्ति इसका कुछ भी ध्यान नहीं रखते और ऊंचा मुंह किये अपनी धुन में चलते रहते हैं, पर ऐसा सर्वथा अनुचित है।

(१८) देव-मन्दिर में उचित है कि जो सज्जन दर्शन करते हों उनके सामने से नहीं निकलें और दिशि द्वार के निर्देशानुसार खड़े रहें तथा बैठें। इसका पूरा विवेक रखना चाहिये।

---

*खुले मुंह बोलने से जीव विराधना होती है एवं पर थूक गिरने से ज्ञान की दुर्गन्ध से देवस्थान की नियम से मन्दिर में

भगवान के दर्शन करते हुए अपने अवकाशानुसार प्रभु के आश्रय मार्ग के त्याग, उनका कष्ट सहने में सहनशीलता इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में धीरता, उग्र तप एवं दृढ़ता आदि महानताओं को ध्यान में लावे और उनकी उदार भावना, समभाव, परम उपकारी एवं कल्याणकारी उपदेश आदि अनुपम गुणों का स्मरण चिन्तन करे। केवल इतना ही नहीं उनके गुणों के प्रति दिन प्रतिदिन अपना अभिरुचि बढावे और साथ ही अपनी दशा पर सोचे—मैं कैसा भोगी, कष्ट में व्याकुल होने वाला, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त, कषायों में लीन और पामर हूं। इस तरह अपनी आत्म दशा पर विचार करता हुआ सोचे कि मेरी आत्मा भी सत्ता एवं वास्तविक दृष्टि से परमात्मा के सदृश ही है फिर भी यह महान् अन्तर क्यों? इसका कारण मेरा विषयों में रमण करना और आत्म स्वरूप को भूल जाना है। आज मैं प्रभु के दर्शन कर प्रतिज्ञा करता हू कि प्रभो! मैं आपके बताये हुए मार्ग पर चलने का भरसक प्रयत्न करूंगा तथा यथाशक्ति आपके आदर्शों का अनुकरण करूगा। इस तरह अपने दोषों पर शान्त चित्त से विचार करे और उन्हें छोड़ने का प्रयत्न करे। केवल इतना ही नहीं गत दिवस की अपेक्षा अपने दूषणों में कितनी कमी हुई है, यह भी देखे और उन्हें घटाने का प्रयत्न करे। इस तरह विविध प्रकार से प्रभु की महानता एवं महिमा का स्मरण और अपनी दयनीय दशा पर विचार करे। प्रभु

भक्ति में अपने आपको समर्पण कर दे। भावना भावे कि मैं धन्य हूँ और मेरा अहोभाग्य है कि आज मुझे आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मालूम होता है कि आज मेरा भाग्योदय हुआ है और अब मेरा शीघ्र ही कल्याण होगा।

पूजा* करने की विधि एवं भावनाएं

शास्त्रों में तीनों काल पूजा का विधान है। प्रातःकाल दर्शन के समय वासक्षेप, मध्याह्न में अष्ट द्रव्य एवं सायंकाल के समय धूप दीपादि से पूजा की जाती है। उक्त तीनों अवसरों पर द्रव्य पूजा के साथ भाव पूजा करना आवश्यक है। वास्तव में द्रव्य पूजा तो भाव पूजा के निमित्त ही की जाती है, क्योंकि द्रव्य भावोत्पादन में सहायक है।

पूजा करते समय प्रभु की तीनों अवस्थाओं[1] की पूजा की

---

* पूजा करने वाले व्यक्ति को उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त और भी विशेष कर अंग, वसन, मन, भूमि, पूजोपकरण, न्याय द्रव्य एवं विधि की शुद्धता का ध्यान रखना आवश्यक है। "उपासकों के लिये आवश्यक बातें" अध्याय में वर्णित बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

१—प्रभु की पूजा करते समय जिस अवस्था की पूजा करें, उस समय लक्ष्य यह रहे कि मूर्ति उन्हीं अवस्थाओं में है। प्रभु के जीवन की उस समय की अवस्था का स्मरण कर भक्ति तथा उनके त्याग, तप, उपकार और अन्त में सिद्धावस्था का चिन्तन कर अपना आत्मोत्कर्ष करना चाहिये।

चन्दन-पूजा१

सर्व प्रथम मन में ये भाव लाने चाहिये कि हे प्रभो! जैसी शीतलता और सुगन्ध इस चन्दन में समायी हुई है वैसी ही शीतलता मेरे काम क्रोधादि ताप नष्ट होकर मेरी आत्मा में प्रकट हो और मुझे समभाव रूप सौरभ की प्राप्ति हो। हृदय में उस भावना को लिये अपने दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली से निम्नलिखित भावों के साथ प्रभु के नवर अगों को मेंटना चाहिये —

चरण पूजा करते समय—

हे सर्वज्ञ देव! आपने स्थान स्थान में भ्रमण कर अनेक प्राणियों को ज्ञानोपदेश दिया है इस सत्कार्य में आपके चरण द्वय यथेष्ट काम आये हैं अत आपके चरण कमल पूजनीय हैं। आपके इन उपकारी चरण कमलों ने जिस प्रकार सेवाधर्म का

१—चन्दन पूजा में चन्दन उच्च कोटि का और छेद, गांठ एव काले धब्बे आदि रहित होना चाहिये। जहाँ तक हो चन्दन आदि अपने ही हाथ से घिसना चाहिये। यदि ऐसा न कर सके तो पुजारी से विवेकपूर्वक मुखकोष बधवाकर एव ओरसिया आदि साफ करवा कर शुद्ध जल से घिसवाना चाहिये।

२—नव अंगों में चरण, जानु, कर और
और फिर बायें अगों का पूजा करनी

मार्ग उपस्थित किया है उसी प्रकार मैं इनकी सच्चे हृदय से
पूजा करता हुआ कामना करता हूँ कि मैं भी सेवाभावी बनू ।
जानु पूजा करते समय—

हे प्रभो ! आपके ये घुटने आपकी ध्यानावस्था में बड़े सहायक प्रमाणित हुए हैं। ये समाधि की भूमिका हैं। अतएव मैं इनकी भाव से पूजा करता हूँ और कामना करता हूँ कि मैं आपके ध्यान द्वारा परम पद को प्राप्त करू।

कर पूजा करते समय—

हे परमोपकारी ! आपने इन हाथों से सावत्सरिक दान देकर एव अनेक प्राणियों को भागवती दीक्षा देकर उनका कल्याण किया है तथा आपके इन वरद हस्त कमलों से और भी अनेकानेक उत्तम कार्य हुए हैं, अतएव मैं इनकी अन्त करण से पूजा करता हूँ। साथ ही चाहता हूँ कि मैं भी इन हाथों से दानादि शुभ कार्य करता रहूँ। मुझ में दया एव उदारता के भाव उदय होवें।

स्कन्ध पूजा करते समय—

हे भगवान् ! जिस तरह आपने अपने पर आरूढ क्रोध, मान मायादि मलों को उतारकर इस ससार समुद्र को सयम एव त[illegible] रूपी भुजायल से पार किया है उसी तरह मैं इनकी हृदय से पूज[illegible] करता हुआ चाहता हूँ कि मेरे से भी राग द्वेषादि कषाय दूर हों

मस्तक पूजा करते समय—

हे सिद्ध परमात्मा ! शरीर में मस्तक के स्थान की भा[illegible]

करके मैं धन्य हूँ। मेरा वही दिन सफल होगा जिस दिन मेरे हृदय में इन गुणों का वास होगा। मेरी पूजा करने का सार इसा में है कि मेरे हृदय में मैत्री, प्रमोद माध्यस्थ एव करुणा भावना का विकास हो।

नाभि पूजा करते समय—

हे गुणागार! आपके नाभि कमल में जो गुण अवस्थित थे उन गुणों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। उन गुणों की धातु का अर्चन कर मैं विनती करता हूँ कि उस गुण राशि के अकुर मुझ में भी प्रस्फुटित हों।

महा पुरुषों ने उपर्युक्त भावों के दोहे भी बना दिये हैं, जिनमें से एक कवि के दोहे यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

पर उपकारी चरणयुग, अनन्त शक्ति स्वयमेव।
यातें प्रथम पूजिये आतम अनुभव सेव ॥१॥
जानु पूजा दूसरी, समाधि भूमिका जान।
आतम साधन ज्ञान ले, शुद्ध दशा पहिचान ॥२॥
कर पूजा जिनराज की, दिये सम्वच्छरी दान।
ले कर मुझ मस्तक ठवू, पहुँचे पद निर्वाण ॥३॥
भुजबल शक्ति जान के, पूजा करू चितलाय।
रागादि मल हटाय के, आतम गुण दर्शाय ॥४॥
सिर पूजा जिनराज की लोक शिरोमणि भाय।

आपने सर्वोत्कृष्ट भावों के द्वारा पंचम गति को प्राप्त किया है अतएव मैं आपके मस्तक को भेंटते हुए आकांक्षा करता हूँ मुझे भी यह सर्वोत्कृष्ट गति प्राप्त हो।

ललाट पूजा करते समय—

हे तीर्थ पते! आपने अनेक परिषहों को सहन कर कर्ममल को दूर किया है और लोक में तिलकवत् शिरोमणि बने हैं अतएव मैं आपके तिलक के स्थान ललाट की भक्ति पूर्वक पूजा करता हुआ चाहता हूँ कि मेरे सर्व विकार दूर हों और मैं उच्चावस्था को प्राप्त करूं।

कंठपूजा करते समय—

हे देवाधिदेव! आपने अपने कंठ द्वारा अहिंसा एवं अनेकान्तमय सत्य धर्म का उपदेश देकर लोक कल्याण का महान् कार्य किया है। आज भी आपकी कंठध्वनि जगत के लिये परम आधार है अतएव मैं उसकी परम उल्लास से पूजा करता हुआ प्रेरणा चाहता हूँ कि मेरा कंठ निरंतर आपका गुणगान करता रहे। मैं आपकी मंगलमय वाणी का सच्चा अनुगामी बनूं और आपके आदर्शों का प्रचार करूं

हृदय की पूजा करते समय—

हे करुणा सिन्धु! आपकी 'सवि जीव करूं शासन रसी' की भावना आपके अनुपम उदार हृदय की परिचायिका है आपके जिस हृदय में असीम क्षमा, असाधारण धैर्य, अपार सहनशीलता एवं अलौकिक समता का निवास था उसकी पर

मैं धन्य हूँ। मेरा वही दिन सफल होगा जिस दिन मेरे में इन गुणों का वास होगा। मेरी पूजा करने का सार यही है कि मेरे हृदय में मैत्री, प्रमोद माध्यस्थ एवं करुणा भावना का विकास हो।

नाभि पूजा करते समय—

हे गुणागार! आपके नाभि कमल में जो गुण अवस्थित हैं उन गुणों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। उन गुणों की धातु का अर्चन कर मैं विनती करता हूँ कि उस गुण राशि के अंकुर मुझ में भी प्रस्फुटित हों।

महा पुरुषों ने उपर्युक्त भावों के दोहे भी बना दिये हैं, उनमें से एक कवि के दोहे यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

पर उपकारी चरणयुग, अनन्त शक्ति स्वयमेव।
यातें प्रथम पूजिये आतम अनुभव सेव ॥१॥
जानु पूजा दूसरी, समाधि भूमिका जान।
आतम साधन ज्ञान ले, शुद्ध दशा पहिचान ॥२॥
कर पूजा जिनराज की, दिये सम्वच्छरी दान।
ते कर मुझ मस्तक ठवू, पहुँचे पद निर्वाण ॥३॥
भुजबल शक्ति जान के,
रागादि मल हटाय के,
सिर पूजा जिनराज की
चउगति गमन मिटाय के,
लिखदू पूजा सार
धन्न कमल पाणी

आपने सर्वोत्कृष्ट भावों के द्वारा परम गति को प्राप्त किया है अतएव मैं आपके मस्तक को भेंटते हुए आकांक्षा करता हूँ कि मुझे भी यह सर्वोत्कृष्ट गति प्राप्त हो।

ललाट पूजा करते समय —

हे तीर्थ पते! आपने अनेक परिषहों को सहन कर कर्ममल को दूर किया है और लोक में तिलकवत् शिरोमणि बने हैं अतएव मैं आपके तिलक के स्थान ललाट की भक्ति पूर्वक पूजा करता हुआ चाहता हूँ कि मेरे सर्व विकार दूर हों और मैं उच्चावस्था को प्राप्त करूं।

कंठपूजा करते समय—

हे देवाधिदेव! आपने अपने कंठ द्वारा अहिंसा एवं अनेकान्तमय सत्य धर्म का उपदेश देकर लोक कल्याण का महान् कार्य किया है। आज भी आपकी कंठध्वनि जगत् के लिये परम आधार है अतएव मैं उसकी परम उल्लास से पूजा करता हुआ प्रेरणा चाहता हूँ कि मेरा कंठ निरंतर आपका गुणगान करता रहे। मंगलमय वाणी का सच्चा अनुगामी बनूं और का प्रचार करूं

हे 'सवि जीव करूं

की भावना उदार हृदय की

आपके सीम क्षमा,

रूपी महा ईंधन भस्म हो जाय तथा जिस प्रकार इस धूपसे अशुभ गन्ध आदि नष्ट होकर सुगन्ध फैलती है उसी तरह मेरी आत्मा के अशुभ भावों का नाश हो और शुभ भाव सौरभ उत्पन्न हो। साथ ही जिस प्रकार इसका धुँआ ऊर्ध्वगमन करता है उस प्रकार मैं भी ऊर्ध्वगामी बनूं।

दीप पूजा*

प्रभु के सम्मुख दीपक करते हुए विचार करना चाहिये कि हे प्रभो! आप अज्ञानान्धकार को दूर करने में प्रदीप के समान सर्वव्यापी है। मेरी आत्मा में भी इस दीपक के प्रकाश की भाँति ज्ञान का प्रकाश हो।

अक्षत पूजा†

प्रभु के सम्मुख, चौकी (पट्टा) आदि पर अक्षतों का स्वस्तिक, उस पर पुञ्जत्रय (तीन ढेरियां) और तत्पश्चात अर्द्ध चन्द्राकार (सिद्ध शिला का रूप) बनाते हुए प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ इस स्वस्तिकमें प्रदर्शित इन चार गतियोंके चक्कर से मैं निकलूं और ज्ञान दर्शन, एवं चारित्र के प्रतीक इस पुजत्रय द्वारा मैं आप से सविनय विनती करता हूँ कि मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो तथा उसके फलस्वरूप सिद्ध शिला पर

---

* दीप शुद्ध घृत का होना चाहिये और जो दीपक बहुत ...ा रहे वह अनावरित (उघाडा) नहीं रहना चाहिये।

† ...शब्द गिने हुए पर जहाँ तक हो सके अखण्डित ...पूलों में अखण्डित ही चढाने का विधान है।

कंठ पूजा है सात भी, वचनातिशय वृन्द।
सत भेद पैंयालिश श्रुत, अनुभव रसनो कन्द ॥७॥
हृदय कमलनी पूजना, सदा वसो चित माह।
गुण विवेक जागे सदा, ज्ञान कला घट-छाह ॥८॥
नाभी मडल पूजने, षोडश दल की भाव।
मन मधुकर मोही रह्यों, आनन्द घन दरसाव ॥९॥

पुष्प पूजा*

पुष्प चढाते हुए विचार करना चाहिये कि हे प्रभो, जिस तरह ये पुष्प पवित्र, सुगन्ध युक्त कोमल एव विकसित हैं, उसी तरह मेरी आत्मा में पवित्रता, कोमलता तथा उसके फल स्वरूप निर्मल भाव रूप सुगन्ध का विकास हो। मुझे ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एव वीर्याचार की प्राप्ति हो।

धूप पूजा†

धूप खेते हुए विचार करना चाहिये कि हे प्रभो मेरा कर्म

*पुष्प कटे, छिदे, सडे गले और सूखे हुए तो होवें ही नहीं साथ ही ताजे, विकसित अखण्ड और सुगन्ध युक्त होने चाहियें। पुष्प तोडे हुए एव नीचे गिरे हुए न हों इसका भी उपयोग रखना चाहिए।

ऋतुवती स्त्री द्वारा लाये गये पुष्प भी काम में नही लेने चाहिये।

†अगर तगर, कस्तूरी, सलारस एव कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य युक्त होना चाहिये।

रूपी महा ईंधन भस्म हो जाय तथा जिस प्रकार इस धूपसे अशुभ गंध आदि नष्ट होकर सुगन्ध फैलती है उसी तरह मेरी आत्मा के अशुभ भावों का नाश हो और शुभ भाव सौरभ उत्पन्न हो। साथ ही जिस प्रकार इसका धूँआ ऊर्ध्वगमन करता है उस प्रकार मैं भी ऊर्ध्वगामी बनू ।

दीप पूजा*

प्रभु के सम्मुख दीपक करते हुए विचार करना चाहिये कि हे प्रभो! आप अज्ञानान्धकार को दूर करने में प्रदीप के समान सर्वव्यापी हैं। मेरी आत्मा में भी इस दीपक के प्रकाश की भांति ज्ञान का प्रकाश हो।

अक्षत पूजा†

प्रभु के सम्मुख, चौकी (पट्टा) आदि पर अक्षतों का स्वस्तिक, उस पर पुञ्जत्रय (तीन ढेरियां) और तत्पश्चात् अर्द्ध चन्द्राकार (सिद्ध शिला का रूप) बनाते हुए प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ इस स्वस्तिकमें प्रदर्शित इन चार गतियोंके चक्कर से मैं निकलूं और ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र के प्रतीक इस पुजत्रय द्वारा मैं आप से सविनय विनती करता हूँ कि मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो तथा उसके फलस्वरूप सिद्ध शिला पर

---

* दीप शुद्ध घृत का होना चाहिये और जो दीपक बहुत देर तक रखा रहे वह अनावरित (उघाडा) नहीं रहना चाहिये।

† —अक्षत शब्द बिने हुए एवं जहाँ तक हो सके अखण्डित होने चाहिये। शास्त्रों में अखण्डित ही चढाने का विधान है

मेरा निवास हो। विभो! जिस तरह से ये अक्षत उज्ज्वल अमल एवं अखण्डित हैं, उसी भांति मेरा हृदय भी शुभ्र एवं निर्मल हो और मुझे शुक्ल ध्यान एवं अखण्ड सुख की प्राप्ति हो अर्थात मुझे जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति मिले।

नैवेद्य पूजा†

प्रभु के सम्मुख नैवेद्य चढ़ाते हुए विनती करनी चाहिये कि हे देव! आपने मिष्टान्न आदि रसना के विषयों पर विजय प्राप्त की है और मैं इनमें लिप्त हूँ, अतएव मैं आपके सम्मुख इनको (नैवेद्य) समर्पण करता हुआ प्रार्थना करता हूँ कि मेरा भी रसेनेन्द्रिय पर अधिकार हो और मुझे अनाहारी पद प्राप्त हो।

फल पूजा‡

प्रभु की सेवा में फल भेंट करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभो! इस द्रव्य फल को अर्पण करता हुआ मैं आप से सम्यक्त्व रूपी भावफल की याचना करता हूँ। मुझे पूर्ण फल प्राप्त हो।

---

†—नैवेद्य स्वच्छ शुद्ध एवं अखण्डित होना चाहिये। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि उसका रस चलित नहीं हो गया हो।

‡—फल सड़े गले, मुर्झाए हुए एवं चलित रस वाले, और तुच्छ तथा वर्जनीय नहीं होने चाहियें; अपितु ताजे, परिपक्व एवं सुन्दर होने चाहियें।

इस प्रकार अष्टप्रकारी पूजा करके मन में भावना पैदा करनी चाहिये कि इसके फलस्वरूप मेरे आठ कर्मों का क्षय हो।

उक्त सद् प्रवृत्ति करते समय यदि किसी प्रकार की जीव विराधनादि हुई हो तो उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप तथा उस से उऋण होने के लिए इरियावही आदि सहित एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करके प्रकट लोगस्स बोले। इसके अनन्तर तीन निसीहि करके द्रव्य पूजा का भी त्याग करे।

भावपूजा—चैत्यवन्दन

चैत्यवन्दन में प्रवृत्त होने के लिये वर्तमान में निम्नलिखित विधि कीजाती है। जिसका क्रम इस प्रकार है—

(१) प्रणिपात—तीन बार खमासमण सूत्र के साथ पचाग प्रणाम करना।

(२) चैत्यवन्दन करने की आज्ञा मागना—'इच्छाकारेण सदिसह भगवन्! चैत्यवन्दन करू' ?, पाठ द्वारा

(३) आदेश की स्वीकृति —'इच्छ' द्वारा

(४) मगलरूप आद्य स्तुति (चैत्यवन्दन)—'जग चिन्ता मणि' 'जयउसामिय' सकल कुशल वल्ली आदि द्वारा।

नोट—आसन—दाहिना घुटना नीचे और बायां घुटना ऊँचा करके योग एव मुक्तासुक्ति मुद्रामें चैत्यवन्दन (मगल रूप आद्य स्तुति) से जयवीयराय पर्यन्त और खडे होकर अरिहन्त चेइ याण से काउसग्ग के पश्चात् स्तुति बोलने तक जिन मुद्रा में की क्रिया की जाती है।

गाथा द्वारा तीर्थकर पद की भूत वर्तमान एव भविष्यकालीन अवस्थाओं को भी वन्दन किया जाता है, जिससे इस पद (अरिहन्त पद) की महत्ता आराध्य रूप में हृदय में स्थिर होती है। 'योग मुद्रा' का हेतु जिनेश्वर देव के गुणों में तल्लीनता प्राप्त करना है। फिर 'सव्व चेईय वन्दन सुत्त' (जावति चेई आई) का पाठ सर्व चैत्यों के प्रति मन में पूज्यभाव को अंकित करता है तथा खमासमण प्रणिपात की क्रिया और सव्व साहू वन्दणसुत्त (जावत के विसाहू)* का पाठ ससार भरमें चारित्र की सुवास फैलानेवाले साधु मुनिराजों के प्रति पूज्य भावों की अभिव्यक्ति करता है।

इतनी विधि कर चुकने के पश्चात् नमोऽर्हत सिद्धासूत्र' के मगलाचरण पूर्वक स्तवन बोला जाता है। अनुभाता के लिए यहा अपने हृदय तन्त्री को झकृत कर देने का सुअवसर आता है। कारण कि 'तोते के राम' की तरह केवल मुँह से उच्चारण लेने का कोई अर्थ नहीं होता। भगवत् भजन की इच्छा, प्रवृत्ति एव तल्लीनता, ये तीनों ही मगलकारी हैं स्तवन चैत्यवन्दन का हृदय है या यह कहिये कि यह इसका प्राण है।

* चैत्यवन्दन के अधिकार में यह साधु वन्दना कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि भिन्न भिन्न भूमिकाओं में रहकर आत्म विकास की साधना करनेवाले ये सत पुरुष चैत्यवन्दन रूपी श्रद्धायोग अथवा भक्तियोग की भावना को दृढ करने में निमित्त भूत हैं।

इसलिए इसको बोलते समय हमारी भावना का स्रोत पूर्ण वेग से प्रवाहित होना चाहिये। इसमें काव्यकला को स्थान है, संगीत कला को अवकाश है और अभिनय कला को यथेष्ट मार्ग है, परन्तु शर्त एक ही है कि ये सब अर्हद् उपासना की तल्लीनता में से उद्भव होने चाहिये।

तत्पश्चात् 'प्रार्थना प्रणिधान' (जयवीयराय) के पाठ द्वारा हृदय की शुभ भावनाओं को दृढ किया जाता है और अन्त में 'चेइय वंदन सुत्त' (अरिहंत चेइआणं) सूत्र द्वारा अर्हत् चैत्यों को निमित्त बनाकर 'काउसग्ग सुत्त' (अन्नत्थ सूत्र) के उच्चार पूर्वक कायोत्सर्ग की क्रिया में एक नवकार मंत्र का आराधन किया जाता है। चैत्यवन्दन की अन्तिम सिद्धि कायोत्सर्ग एवं ध्यान द्वारा ही है। यह प्रमाणित करने के लिए ही इसका क्रम अन्त में रखा गया है। यह कायोत्सर्ग श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा, एवं अनुप्रेक्षा पूर्वक होना चाहिये। इस बात का सूचन सूत्र के मूल पाठ में ही किया गया है। इस कायोत्सर्ग ध्यान की पूर्णाहुति नवकार मंत्र के पहले पद के उच्चारण द्वारा की जाती है और चैत्यवन्दन की पूर्णाहुति अन्त में मंगल रूप एवं अधिकृत जिन स्तुति (कल्याण कंद आदि थुई) तथा खमासमण की वन्दना पूर्वक की जाती है।

श्री जिनेश्वर देव के गुणों का बारम्बार रटन करने से उनकी प्राप्ति में उत्साह बढ़ता है, चित्त में प्रसन्नता प्रकट होती है और उसके लिये आवश्यक पुरुषार्थ का बल प्रकट होता है

ील रेडियो ने मेरा वतो

। प्रत्र रूप म अन भी
ीं ि रमी वनानिरा न
कमुर का मफल ाज
िु भका भी मोरा नही
।

'चैत्यवन र्क की दिशा

तस्मात् त कदम उठाएं

चैत्यवन्दन सरामाराव का विहार

शुभ भावों से ार अफसरो में

ी आत्म कल्याण भाषण

जनवरा । पचवपाप

अन्ना, फला

पशुओं के सुधा

योजनाए

नई ि ी १४ जनवरा। तीय कृषि अनुमधान परिषद के पार मडर न अपनी बक में मका गट् और मक्का पर आ राजा में श्याम सबधी प्रगा केन आम और सनरे क मधा एक योजना बनाइ ह ।

परिषद क उपाध्यक्ष श्री म रधावा ने बैठक की अध्यक्षता म न कृष अनुसंधान

वैतनिक पुजारी एवं सफाई आदि काम करनेवाले भृत्यों के कार्य और कर्त्तव्य

(१) मन्दिर खुलने के समय से लेकर मगल (बन्द) होने तक सब समय उपस्थित रहना एव आवश्यक कार्यों में किसी तरह की लापरवाही नहीं करना।

(२) प्रात काल आते ही जल रखने तथा केशर घिसने की जगह और मन्दिर के रग मण्डप को अच्छी तरह परिस्कार करना एव पक्षियों आदि के द्वारा की हुई गन्दगी को साफ करना। जहाँ तक हो सके, उक्त गन्दगी को ऊन के दण्डासन या कोमल मोरपंखी के दण्डासन से साफ करना।

(३) गन्दगी साफ करने के पश्चात् जलपात्र कलश, थाली, कटोरी एव पुष्पों की टोकरी (डलिया) आदि पूजा के उपकरण (प्रयोग में आनेवाली सभी वस्तुए) को साफ धोकर पोंछना तथा उन्हें समुचित स्थान पर रख देना।

१कलश सीधी नली वाला रखना चाहिए, ताकि उसे साफ करने में सहूलियत रहे।

१—"कलश" नली में दूध आदि का अश नहीं रहना चाहिए।

(४) एकत्रित की हुई गन्दगी को ऐसे स्थान पर गिराना। जहा जीवों की रक्षा हो सके।

(५) दीपक लालटेन एव धूपदान आदि में से बचा हुआ बासी घृत, दीपक की बत्ती तथा राख आदि निकाल कर साफ कर देना। जो पात्र या वस्तु जल से साफ करने योग्य न हो उसे कपडे से पोंछकर साफ करना और इन वस्तुओं को साफ करके रखना।

(६) धूपदान एव मण्डप में पडे हुए पट्टे आदि को ऐसे स्थान पर रखना कि किसी के पैर में नही आवे।

(७) प्रत्येक प्रमुख जिन मण्डप के बाहर ऐसे स्थान पर लालटेन या ढक्कनवाले दीपक को जलाकर रखना चाहिये, जहाँ सबकी दृष्टि जा सके तथा उसके पास ही अगर बत्ती एव किसी अन्य पात्रमें घृत भी रख देना चाहिए, (घृतके पात्रको सब समय ढककर रखना चाहिये)। जिससे कि स्नान न किये हुए व्यक्ति को भी धूप दीप करने एव घृत डालने की सुविधा रहे।

(८) प्रत्येक प्रमुख जिन मण्डप के सामने मन्दिर के खुलने से मगल (बन्द) होने तक दीपक जलना चाहिये एवं ऊपर नीचे के मूल मण्डपों में जबतक पुजारी पूजा धूपादि करे, तब तक दीपक जलता रहे। दीपक में ज्यादा घी नहीं डालना चाहिये। ऐसा करने से घी का दुरुपयोग होता है।

(९) चन्दनादि घिसने के लिए जल, केशर, घी अगरबत्ती, दियासलाई, एव रुई, आदि वस्तुओं को पहले से ही

ध्यानपूर्वक यथास्थान रख देना चाहिये। ऐसा देखा जाता है कि समय पर किसी वस्तु के न पाने पर कितने ही सज्जन आलस्य और जल्दी में उन्हें छोड़कर काम चला लेते हैं। लेकिन यह उचित नहीं है। उन पात्रों को जिनमें वस्तुएं रखी जायँ, ढँककर रखना चाहिये, ताकि उसमें कोई जीव जन्तु या गन्दगी न पड़े।

(१०) बिना स्नान किये जिन मण्डप में कदापि प्रवेश नहीं करना चाहिये। यदि किसी वस्तु की नितान्त आवश्यकता हो तो पुजारी या अन्य पूजा करनेवाले से माग लेना उचित है।

(११) अगलुहणों एवं पादलुहणों को मूल मण्डप में पूजा हो जाने के पश्चात् धोकर ऐसे स्थान में रखना चाहिये, जहाँ सूखनेके बाद वे नरम (मुलायम) रहें तथा इनका अन्य किसी वस्तु से स्पर्श न हो। इनको धोने के बाद या पहले कभी भी नीचे जमीन पर नहीं रखना चाहिये एवं अपने शरीर या कपड़े से स्पर्श नहीं होने देना चाहिये। इनका धोया हुआ जल किसी दिवार आदि पर न गिराकर मन्दिर के बाहर ऐसे स्थान पर धीरे धीरे गिराना चाहिये जो निर्जीव हो और जहा जल्दी सूख जाय अथवा गगा आदि नदियों में डाल देना चाहिये।

(१२) स्नात्र जल में से वर्क, फूल पत्र चावल आदि जो वस्तुएं निकाली जा सकती हों, उनको निकाल कर पत्र अगलुहणों से उस जल को छानकर किसी योग्य स्थान में थोड़ा थोड़ा करके गिराना चाहिये, जिससे किसी त्रस जीव

या वनस्पति की उत्पत्ति न हो। साथ ही इसका भी ध्यान रहे कि जिस स्थान पर वह जल गिराया जाय उस स्थान पर आने जाने का कोई मार्ग न हो, ताकि वह जल किसीके पाव के नीचे न आवे।

(१३) ऐसा देखा गया है कि जहा अधिक जिन मडप होते हैं, वहा सभी जिन मडपो के जल को एकत्रित करके एक साथ में गिराया जाता है, किन्तु ऐसा करने से उस जल में मक्खियाँ आदि जीव पडकर नष्ट हो जाते हैं। इसलिये, ज्योंही एक जिन मण्डप की पूजा समाप्त हो, त्योंही उस स्थान के जल को योग्य स्थान में गिरा देना चाहिए। यदि सभी जिन मण्डपों के जल को एक साथ गिराना हो तो उस जलको ढक्कनवाले वर्तन में ढककर रखना चाहिए।

(१४) चूहा, गिलहरा, मक्खी एव कबूतर आदि किसी भी जीव का कलेवर या उनकी हड्डी वगैरह मन्दिर में कहीं भी हो तो उनको मन्दिर के बाहर किसी दूर जगह घूर आदि स्थानों में गिरा देना चाहिये।*

(१५) मन्दिर मगल (बन्द) करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(क) दूसरा बार गन्दगी निकालते समय खिडकियां, दीवार जालियाँ आदि में जो जालें वगैरह बच जाते हैं, उन

* ऐसे अवसर पर स्नान करने के बाद ही मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये।

सवको साफ कर देना चाहिये।

फूडे करकट में जो वादाम, मखाना, चावल आदि हों, उनमें कोई जीव जन्तु न लगे ऐसे सुरक्षित स्थानमें उन्हें रखना चाहिये एव रग मडप मे पडे हुए धूप दान, पट्टे आदि किसी के पैरों में नहीं आवें तथा ऐसे स्थान में रखना चाहिए जहाँ टूटने फूटने की बिल्कुल आशका न हो।

(ख) उपर्युक्त नियम के अनुसार खिडकियों, जालियों आदि को नित्य साफ करना चाहिए यदि ऐसा न हो सके तो हर वक्त प्रयोग में आनेवाले स्थान को तो अवश्य साफ कर देना चाहिए। अन्य स्थानों की सफाई भी सप्ताह में एकबार अवश्य करनी चाहिए तथा जिन मण्डपों के आगे यदि कोई फूल आदि पडे हो तो उन्हें शीघ्र ही उठा लेना चाहिये।

(ग) बादाम, मिश्री आदि चीजों पर चींटी आदि न आवे, इसलिए उनको किसी ढकनवाले डब्बे या लकडी की पेटी में रखना चाहिये।

(घ) पूजा की बची हुई केशर तथा जल बासी नहीं रहना चाहिये। अत इन्हें प्रतिदिन बाहर निकाल कर इनके उपकरणों को साफ कर देना चाहिए।

(ङ) लालटेन, दीपक, आरती मगलदीप, ढक्कन, थाली कटोरी आदि प्रत्येक बर्तन को नित्य साफ कर उचित स्थान पर रखने का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

(१६) यदि वर्षा के समय वर्षा का जल मन्दिर के किसी

या वनस्पति की उत्पत्ति न हो। साथ ही इसका भी ध्यान रहे कि जिस स्थान पर वह जल गिराया जाय उस स्थान पर आने जाने का कोइ मार्ग न हो, ताकि वह जल किसीके पाव के नीचे न आवे।

(१३) ऐसा देखा गया है कि जहाँ अधिक जिन मडप होते हैं, वहा सभी जिन मडपो के जल को एकत्रित करके एक साथ में गिराया जाता है, किन्तु ऐसा करने से उस जल में मक्खिया आदि जीव पडकर नष्ट हो जाते है। इसलिये, ज्योंही एक जिन मण्डप की पूजा समाप्त हो, त्योंही उस स्थान के जल को योग्य स्थान में गिरा देना चाहिए। यदि सभी जिन मण्डपों के जल को एक साथ गिराना हो तो उस जलको ढकनवाले वर्तन में ढककर रखना चाहिए।

(१४) चूहा गिलहरा, मक्खी एव कबूतर आदि किसी भी जीव का कलेवर या उनकी हड्डी वगैरह मन्दिर में कहीं भी हो तो उनको मदिर के वाहर किसी दूर जगह घूर आदि स्थानों में गिरा देना चाहिये।*

(१५) मन्दिर मगल (वन्द) करते समय निम्नलिखित वातों पर ध्यान देना चाहिये।

(क) दूसरा वार गन्दगी निकालते समय खिडकियाँ, दीवार जालियाँ आदि में जो जालें वगैरह वच जाते हैं, उन

* ऐसे अवसर पर स्नान करने के वाद ही मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये।

सबको साफ कर देना चाहिये ।

कूडे करकट में जो बादाम, मखाना, चावल आदि हों, उनमें कोई जीव जन्तु न लगे ऐसे सुरक्षित स्थानमें उन्हें रखना चाहिये एव रग मडप मे पडे हुए धूप-दान, पट्टे आदि किसी के पैरों में नहीं आवें तथा ऐसे स्थान में रखना चाहिए जहाँ टूटने फूटने की विल्कुल आशका न हो ।

(ख) उपर्युक्त नियम के अनुसार खिडकियों, जालियों आदि को नित्य साफ करना चाहिए यदि ऐसा न हो सके तो हर वक्त प्रयोग में आनेवाले स्थान को तो अवश्य साफ कर देना चाहिए । अन्य स्थानों की सफाई भी सप्ताह में एकवार अवश्य करनी चाहिए तथा जिन मण्डपों के आगे यदि कोई फूल आदि पडे हो तो उन्हें शीघ्र ही उठा लेना चाहिये ।

(ग) बादाम, मिश्री आदि चीजों पर चींटी आदि न आवे, इसलिए उनको किसी ढक्कनवाले डब्बे या लकडी की पेटी में रखना चाहिये ।

(घ) पूजा की बची हुई केशर तथा जल बासी नहीं रहना चाहिये । अत इन्हें प्रतिदिन बाहर निकाल कर इनके उपकरणों को साफ कर देना चाहिए ।

(ङ) लालटेन, दीपक, आरती मगलदीप ढक्कन, थाली कटोरी आदि प्रत्येक बर्तन को नित्य साफ कर उचित स्थान पर रखने का पूरा ध्यान रखना चाहिए ।

(१६) यदि वर्षा के समय वर्षा का जल मन्दिर के किसी

भाग में बचा हो, तो दूसरे दिन प्रात काल उस जल को वर्षा के ही जल में बाहर मिला देना चाहिए।

(१७) किसी दर्शन या पूजन करनेवालेके बताये हुए कार्य को करना जरूरी है ; किन्तु उसके साथ साथ इस बात का ध्यान रहे कि उस समय जो कार्य हाथ में हो उसकी कोई हानि न हो तथा उसका पूरा प्रबन्ध करते हुए आदेश का पालन करना चाहिए।

(१८) केशर घिसने एव हाथ धोने आदि की जगह का जल एकत्रित हो जाने और अधिक देर तक पड़े रहने से मक्खियाँ आदि जन्तु पड़कर मर जाते है। इसलिए उस जल को तुरन्त बाहर किसी योग्य स्थान में गिराने अथवा सग्रह करने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(१९) यदि मन्दिर में सयोगवश कोई स्त्री ऋतुधर्म को प्राप्त हो गई हो या किसी बच्चे ने टट्टी या पेशाब कर दिया हो, तो शीघ्र उस स्थान को प्रथम जल से साफ कर तत्पश्चात दूध से साफ धो देना चाहिये और उसके बाद धूप दे देना चाहिए।